मोदी के छः माह और हिन्दू फासीवाद

I

मोदी के छः माह

कभी मार्क्स ने कहा था बुर्जुआ समाज में सामाजिक विवेक उन्माद के बाद हावी होता है। और अब मोदी के शासन काल के छः माह बीतने के बाद लगता है कि उन्माद का काल बीत गया है और सामाजिक विवेक के कुछ चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

भारत के एक प्रमुख बुर्जुआ अखबार के एक चर्चित स्तम्भकार ने मोदी के छः माह के समय बीतने पर टिप्पणी की कि मोदी के छः महीने के कार्यकाल को बेहतर ढंग से बताया जाये तो यह अच्छे सितारों की मेहरबानी ज्यादा थे न कि ये अच्छे दिनों की शुरुआत। और फिर यह कह कर चेतावनी देने लगे कि सौभाग्य का हमेशा स्वागत है परन्तु वह हमेशा नहीं रहता। स्तम्भकार का इशारा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की गिरती कीमतों की ओर था।

भारत के रिजर्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन तो इससे भी आगे गये और उन्होंने सभ्य सरकारी भाषा में मोदी के 'मेक इन इंडिया' गुब्बारे की हवा निकालने के लिए दो पिनें चुभोयीं। पहली कि मौजूदा आर्थिक संकट के समय निर्यात उन्मूलन नीतियों पर कैसे भरोसा किया जा सकता है। दूसरी कि चीन की नकल गलत वक्त में गलत देश में हो रही है।

भारत के बुर्जुआ वर्ग के अन्य कोनों से भी ऐसी ही आवाजें उठने लगीं। हार से पस्त कांग्रेस पार्टी के मुंह में छः माह बाद जुबान आयी और उसने 'यू टर्न सरकार' के नाम से पुस्तिका जारी कर मोदी के चुनाव पूर्व वायदों की पोल खोली।

वैसे तो कई दशकों से लेकिन खास तौर पर पिछले दो-तीन वर्षों से काले धन का मुद्दा भारतीय पूंजीवादी राजनीति का प्रिय विषय रहा है। कई नेताओं की दुकान काले धन के मुद्दे की बिक्री से चलती रही है। मोदी ने चुनाव पूर्व काले धन पर बहुत बड़े-बड़े बयान दिये। हास्यास्पद ढंग से 100 दिन में काले धन को वापस लाने व हर मतदाता के खाते में 3 लाख रु. डालने के वायदे भी किये। यह सब तो जो था सो था इस नाटक में जब भारत के उच्चतम न्यायालय ने प्रवेश कर मोदी सरकार पर दबाव डाला तो उसके बाद जो कुछ हुआ वह पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के न्याय, कानून, राजनीति की पोल खोलने को पर्याप्त था। हालांकि कोई यह पूछने वाला नहीं था कि मोदी ने जिन हजारों करोड़ रुपयों से चुनाव लड़ा वह कहां से आये। इतनी बड़ी रकम के लेन-देन का कोई हिसाब पेश नहीं हुआ। अतः वह निस्संदेह काला धन ही होगा। समाज में सवाल उठते रहे और वाचाल मोदी एकदम चुप हो गये। उसके दो-चार मंत्री बयान देने लगे कि उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा कि वे सौ दिन में काला धन वापस लायेंगे। काले धन का मुद्दा अगले चुनाव तक के लिए कोल्ड स्टोरेज में डाल दिया गया।

असल में देश के मजदूरों-मेहनतकशों के जीवन में पूंजीवादी समाज में अच्छे दिन न तो आने थे और न आये। परन्तु जब स्तम्भकार ने देश में क्षोभ और निराशा नहीं पैदा होने बल्कि अभी आशावान बने रहने की वजह मोदी के अच्छे सितारों को दी तो उसकी सबसे ठोस वजह महंगाई का कम होना है। थोक व खुदरा मूल्य सूचकांक का इन छः महीनों में नीचे गिरना है। और इसमें मोदी सरकार का कोई करिश्मा या प्रयास नहीं है। इसमें सबसे बड़ी भूमिका अंतर्राष्ट्रीय बाजार में गहराते विश्व आर्थिक संकट व कुछ अन्य कारणों से मांग में आयी जबरदस्त कमी की वजह से तेल की कीमतों में आयी भारी गिरावट है।

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतें जो कुछ समय पहले तक 110 डॉलर प्रति बैरल तक थीं अब गिर के 70 डॉलर प्रति बैरल या उससे भी नीचे जा चुकी हैं। तेल भारत की सबसे बड़ी और मुख्य आयातक वस्तु है। तेल की कीमतों में इस भारी गिरावट का लाभ उठाते और संप्रग सरकार की नीतियों को आगे बढ़ाते हुए मोदी सरकार ने डीजल के मूल्य नियंत्रण की प्रणाली को पूर्णतः समाप्त कर इसे पूर्णतः बाजार के हवाले कर दिया। भारी मात्रा में तेल की कीमतों में गिरावट का तात्कालिक लाभ उपभोक्ताओं को यह मिला कि डीजल-पैट्रोल के दाम हाल के महीनों में कई दफा सरकारी-निजी तेल कम्पनियों द्वारा गिराये गये। हालांकि इस बीच केन्द्र व राज्य सरकारों ने चुपचाप इन पर लिये जाने वाले करों को काफी बढ़ा दिया परन्तु यह सब चर्चा का विषय नहीं बना। यदि कर नहीं बढ़ाये जाते तो इसके दाम में और कमी आती। भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में होने वाली बढ़ोत्तरी से भारत के भीतर तेल की कीमतें फिर आसमान छूने लगेंगी और तदनुरूप महंगाई में आयी वक्ती कमी तेजी से काफूर हो जायेगी।

असल में दुनिया के कई देशों जैसे जापान, मुद्रास्फीति के बजाय मुद्रा अपस्फीती (डिफ्लेशन) की समस्या से जूझ रहे हैं। भारत में दिसम्बर माह में मुद्रास्फीति की दर के चार फीसदी से और नीचे गिरने पर भारत का उद्योग जगत जो पहले से ही मंदी की मार झेल रहा है, बुरी तरह से चिंतित हो गया। पूंजीवादी समाज में वस्तुओं के दाम में कमी से आम जनता को तो कोई खास लाभ नहीं हो पाता है। उसे तो छंटनी, बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। परन्तु ऐसी स्थिति के आते ही पूंजीपति वर्ग की रीढ़ की हड्डी भी कंपकंपाने लगती है। उसे महामंदी के काल के दिनों की याद सताने लगती है। उसके गोदाम मालों से पट जाते हैं और मुनाफा तेजी से गिरने लगता है।

इस लिहाज से भारत में घटती मुद्रास्फीति राजनैतिक विदूषकों के लिए अपनी पीठ थपथपाने की चीज हो सकती है परन्तु वे स्वयं जिस वर्ग के नुमाइंदे होते हैं वह वर्ग इससे घबराने लगता है। वह चाहता है कि मुद्रास्फीति की स्थिति लगातार बनी रहे और एक नियंत्रित दर से वह बढ़ती रहे।

मोदी के सत्ता संभालने के बाद भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार के कोई संकेत नहीं मिले हैं। सकल घरेलू उत्पाद की दर बढ़ने के बजाय गिरी है। औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर ऋणात्मक तक हो चुकी है। हालत यह है कि फैक्टरियां अपनी उत्पादन क्षमता से करीब तीस फीसदी नीचे उत्पादन कर रही हैं। भारत का औद्योगिक उत्पादन ही नहीं बल्कि निर्यात भी गिर गया है। निर्यात मूलक औद्योगिक इकाइयां इससे भारी संकट में फंस गयी हैं। और ऐसे में गिरता रुपया भी उनका निर्यात बढ़ाने में कोई मददगार नहीं हो पा रहा है।

मोदी ने अपने चुनाव प्रचार के दौरान रुपये की लुढ़कन का खूब प्रचार किया था। और ऐसा करते वक्त उन्होंने इसे राष्ट्रीय गौरव से जोड़ दिया था। अब उनके शासन काल में रुपया प्रति डॉलर के मुकाबले 60 से गिरकर 63 से भी नीचे जा चुका है। मुद्रा अवमूल्यन का लाभ भारत के निर्यातकों को तो नहीं मिल रहा है परन्तु विदेशी निवेशकों और संस्थाओं को मिल रहा है। वे चाहते हैं कि रुपये का और अवमूल्यन हो और वह 70 रुपये प्रति डॉलर तक पहुंच जाये।

भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार रुपये के अवमूल्यन के साथ घटता गया है। तेल की कीमतों में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आयी गिरावट का लाभ उठाने के लिए तेल कम्पनियां डॉलर की खरीद कर रही हैं जिससे एक तरफ रुपये का और अवमूल्यन हो रहा है और दूसरी तरफ विदेशी मुद्रा भण्डार और घट रहा है।

मोदी ने अपने छः माह के कार्यकाल में विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए 'मेक इन इंडिया' का नारा दिया। और उस नारे की बिक्री के लिए मोदी ने अपने अल्प कार्यकाल में ही ब्राजील, जापान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया सहित कई देशों की यात्राएं की। नेपाल, भूटान जैसे भारतीय विस्तारवाद से पीड़ित देशों में वहां के प्राकृतिक संसाधनों की और बड़ी लूट के लिए मोदी ने इन देशों की सरकारों पर भारी दबाव बनाया। रूस, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका के शीर्ष नेता भारत की यात्रा करके बड़ी-बड़ी निवेश योजनाओं के लिए चक्कर लगा रहे हैं ताकि अपने-अपने देशों की आर्थिक समस्याओं के निस्तारण के एक मार्ग के तौर पर यहां के प्राकृतिक संसाधनों, बाजार और श्रम शक्ति का और दोहन कर सकें। इस सबके बावजूद अभी तक भारतीय अर्थव्यवस्था की सेहत में कोई बुनियादी सुधार नहीं हो पाया है। भविष्य संदेह के दायरे में है।

भारतीय पूंजीपति वर्ग और खासकर एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग ने मोदी को प्रधानमंत्री बनवाने के लिए न केवल अपने खजाने के मुंह खोले बल्कि अपना पूरा जोर लगा दिया था। वे तेजी से आर्थिक और श्रम सुधार चाहते हैं। आर्थिक सुधारों में मोदी ने कई फैसले तेजी से लिये। बैंक, बीमा, रक्षा क्षेत्र में देशी-विदेशी निवेश को सुगम बनाने के लिए कई कदम उठाये। भारत के इन क्षेत्रों में विदेशी निवेश तो अभी होना है परन्तु पोर्टफोलियो निवेश के बढ़ने के साथ इस बात का खतरा बढ़ता जा रहा है कि 2007-08 की तरह के आर्थिक संकट में भारतीय अर्थव्यवस्था और भी ज्यादा गहराई तक प्रभावित होगी जितनी की इस दौरान हुयी थी और हालात ऐसे भी पैदा हो सकते हैं कि वह धड़ाम से गिर जाये।

श्रम कानूनों में सुधार के लिए केन्द्र व राज्य सरकारें खासकर भाजपा शासित राज्यों की सरकारें एक के बाद एक कदम उठा रही हैं। ट्रेड यूनियनों का बनाया जाना और भी मुश्किल किया जा रहा है। पूंजीपतियों को यह अधिकार दिया जा रहा है कि वे अपने संस्थान में श्रम कानूनों के सही ढंग से लागू होने का प्रमाणपत्र स्वयं ही दे दें। मोदी सरकार के श्रम कानूनों में सुधार के इस एजेण्डे को कांग्रेस सहित अन्य पार्टियों का संसद में प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन लगातार मिल रहा है। सरकारी वामपंथी कुछ करने की स्थिति में नहीं हैं। वे पस्त हिम्मत, निराश और हर जगह उपेक्षित हैं।

मोदी के सत्तारोहण में एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के साथ हिंदू फासिस्ट संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की केन्द्रीय भूमिका थी। वस्तुतः एकाधिकारी पूंजी की मंशा को कामयाब बनाने में जमीनी मेहनत उसने अपने नेटवर्क के जरिये ही की थी। उसने इस सफलता का सामाजिक आधार तैयार किया था। साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण व जातीय समीकरण बिठाने में उसने रात-दिन एक कर दिया था। एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग और हिन्दू फासिस्ट संगठन मोदी को सत्तारूढ़ कराने में जहां एक थे वहीं उनके अलग-अलग हित और अलग-अलग योजनाएं थीं।

मोदी के सत्तारोहण के बाद एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग की इच्छाओं के अनुरूप आर्थिक सुधारों की गति को तेज कर दिया गया। वे इसकी 2009 में मनमोहन सिंह के पुनः प्रधानमंत्री के बाद से ही बाट जोह रहे थे। मनमोहन सिंह के कार्यकाल के अंतिम तीन वर्ष एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग की इच्छाओं के अनुरूप नहीं बीते थे। मोदी ने मनमोहन सिंह से भी बड़े पैमाने पर भारतीय राज्य के संसाधनों को पूंजीपति वर्ग पर लुटाना पहले दिन से ही शुरू कर दिया। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मोदी के खास चहेते अडाणी को आस्ट्रेलिया में निवेश करने के लिए भारतीय स्टेट बैंक ने भारत के इतिहास का अब तक का सबसे बड़ा ऋण 6,200 करोड़ रुपये का दिया। अडाणी की सम्पत्ति में 6 माह के मोदी के कार्यकाल में अभूतपूर्व वृद्धि हुयी। इसी तरह मुकेश अम्बानी और नरेन्द्र मोदी के बीच के सम्बन्ध को जाहिर करती हुयी एक तस्वीर मशहूर हुयी जिसमें अम्बानी ने प्रधानमंत्री मोदी की पीठ पर हाथ रखा हुआ था।

मोदी के छः माह के कार्यकाल में अडाणी-अम्बानी ही नहीं अन्य देशी-विदेशी बड़े निवेशकों की दौलत में भी तेजी से इजाफा हुआ। शेयर बाजार तेजी से बढ़ते हुये पूर्व के सभी रिकार्डों को ध्वस्त करने लगा। मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज का संवेदी सूचकांक सेन्सेक्स 28000 के स्तर को छूने लगा।

एक तरफ तेजी से आर्थिक सुधार और दूसरी तरफ भारतीय समाज का तेजी से हिन्दुत्वकरण की नीति के आधार पर मोदी ने चुनाव लड़ा। हिन्दू फासीवादी स्कूल में पले-बढ़े और अब विकास का चोला पहने मोदी ने अपने इरादों को 11 जून 2014 को लोकसभा में अपने पहले ही भाषण में इन शब्दों से स्पष्ट कर दिया था। मोदी ने कहा "1200 सालों की गुलामी की मानसिकता हिन्दुस्तानियों को परेशान करती रही है।"

मोदी का यह इतिहासबोध हिन्दू फासिस्ट संगठन संघ की पाठशाला में निर्मित है। मोदी का यह इतिहासबोध हिन्दू फासिस्ट संगठन द्वारा फैलाया गया मिथक है कि भारत में 1000 साल मुस्लिमों ने और 200 साल ईसाइयों ने शासन किया।

मोदी के इस इतिहासबोध की अनुगूंज को विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष अशोक सिंघल के उस बयान से भी समझा जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा कि दिल्ली की सत्ता पर 800 साल बाद पहली बार हिन्दू शासक बैठा है और हिन्दू साम्राज्य की स्थापना हुई है। ऐसी ही बातें संघ प्रमुख मोहन भागवत के हालिया बयानों में देखी जा सकती हैं।

मोदी ने विकास, सद्भाव, राष्ट्रीय एकता और यहां तक कि धर्मनिरपेक्षता की जितनी भी बातें कीं वे संघ के हिन्दू फासिस्ट एजेण्डे के लिए महज आवरण हैं। इसे चुनाव के पहले और चुनाव के बाद सरकार गठन में भी देखा जा सकता है।

भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश, जहां मुस्लिम आबादी सबसे अधिक है, में भारतीय जनता पार्टी ने एक भी मुस्लिम प्रत्याशी नहीं खड़ा किया।

भाजपा के चुने हुए सांसदों में एक भी मुस्लिम सांसद नहीं है। इस बार भारत की संसद में पिछली बार के मुकाबले कम मुस्लिम सांसद हैं।

भाजपा के जिन नेताओं ने साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण में बड़ी भूमिका निभायी उन्हें मंत्रीमंडल में मोदी ने स्थान दिया। इसमें बिहार के गिरिराज सिंह जो मोदी की आलोचना करने वालों को देशद्रोही और पाकिस्तान भेजने की बात कर रहे थे तक शामिल हैं। इसी तरह घोर हिन्दूवादी छवि वाले भाजपा नेताओं उमा भारती, साध्वी निरंजन ज्योति को ही नहीं बल्कि मुजफ्फरनगर में दंगे के आरोपी व्यक्ति को भी केन्द्रीय मंत्रीमंडल में देखा जा सकता है। एक अन्य दंगा आरोपी विधायक को जेड श्रेणी की सुरक्षा उपलब्ध करायी गयी है।

प्रधानमंत्री मोदी ने आदर्श ग्राम योजना के तहत अपने संसदीय क्षेत्र बनारस में एक ऐसा गांव गोद लिया जिसमें एक भी मुस्लिम नहीं है। उनकी देखा देखी कई अन्य भाजपा सांसदों ने भी ऐसा ही किया है।

इसी तरह मोदी सरकार के गठन के बाद के ढेरों उदाहरण मौजूद हैं जिनसे मोदी के हिन्दू फासिस्ट एजेण्डे को आगे बढ़ाने की झलक मिलती है। स्मृति ईरानी, नजमा हेपतुल्ला, सुषमा स्वराज, उमा भारती, निरंजन ज्योति जैसे मंत्रियों ने एक से बढ़कर एक विवादास्पद बयान देकर हिन्दू फासिस्ट विचारधारा को आगे बढ़ाया और साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को तेज किया। यहां एक बात और गौर करने की है कि विवादास्पद बयान आम तौर पर महिला मंत्रियों से दिलवाये गये। जहां इससे उनके महिला होने के नाते उन पर विरोधी हमलावर न हो सकें वहीं इससे बढ़कर भारत की हिन्दू महिलाओं का और तेजी से हिन्दुत्वकरण किया जा सके। यहां एक तीर से दो निशाने साधे गये।

इन चुनावों में भाजपा और संघ दलित व पिछड़ी जातियों के खास समीकरण को बिठाकर और गुजरात की तर्ज पर दलित-पिछड़ी जातियों के हिन्दुत्वकरण के आधार पर चुनाव जीतने में कामयाब रहे थे। सरकार के गठन के बाद से अपने मंत्रीमण्डल को बनाने और समाज में दलित-पिछड़ों के हिन्दुत्वकरण के लिए इस मुहिम को जारी रखा हुआ है। संघ-भाजपा की इस रणनीति का सबसे ज्यादा नुकसान बसपा, सपा, राजद, जद (यू) जैसी पार्टियों को उत्तर प्रदेश व बिहार में उठाना पड़ा था।

'सोशल इन्जीनियरिंग' के चुनावी काट के रूप में भाजपा-संघ की 'रिवर्स इन्जीनियरिंग' का प्रयोग अब बड़े पैमाने पर भारत के दक्षिण और पूर्वी राज्यों में करने की तैयारी की जा रही है ताकि तमिलनाडु, केरल, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में भाजपा-संघ का आधार विस्तृत हो।

मोदी ने सत्ता संभालने के बाद अटल सरकार की तरह संवैधानिक पदों से लेकर विभिन्न केन्द्रीय संस्थाओं में संघ में प्रशिक्षित भरोसेमंद आदमियों को बिठाना जारी रखा हुआ है। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के पद पर एक ऐसे व्यक्ति को बिठाया गया है जो रोज अयोध्या में राम मंदिर बनाने की वकालत करता है। इतिहास परिषद से लेकर विभिन्न संस्थाओं में ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति को देखा जा सकता है जो संघ की पाठशाला में पले बढ़े हैं।

अटल विहारी बाजपेयी ने अपने कार्यकाल में भारत की केन्द्रीय गुप्तचर संस्था आई.बी. का हिन्दुत्वकरण कर दिया था। केन्द्र से लेकर गुजरात तक में इस संस्था के मुस्लिम विरोधी रुख को अटल के सत्ता संभालने के बाद देखा गया। हिन्दू आतंकी संगठनों द्वारा की गयी आतंकवादी घटनाओं को इन्होंने झूठे तौर पर मुस्लिम आतंकवादी कार्यवाहियों के रूप में प्रचारित किया। आतंकी हमलों की झूठी खबरें प्रचारित करके निर्दोष मुस्लिम युवकों के फर्जी इनकाउन्टर तक करवाये। और मुस्लिम आतंकवाद से लड़ने के नाम पर फर्जी मुकदमों में सैकड़ों मुस्लिम युवकों को जेल में डलवाया। आई.बी. को अटल के शासन काल में जो हिन्दुत्व का रंग चढ़ा था उसे आज और गहरा किया जा रहा है। आई.बी. की तरह अन्य संस्थाऐं भगवा रंग में रंगी जा रही हैं।

भारतीय सेना का धर्मनिरपेक्ष चरित्र तेजी से खत्म किया जा रहा है। उसके अफसरों से लेकर सिपाहियों तक में भगवा रंग चढ़ता जा रहा है। यही हालत अर्द्ध सैनिक बलों की है। पुलिस के बारे में हर कोई जानता है कि वह दंगों के दौरान और उसके बाद जांच करने आदि में कितनी अल्पसंख्यक विरोधी भूमिका निभाती है।

मोदी और संघ जिस रणनीति के तहत काम कर रहे हैं उसमें भारतीय राज्य की हर संस्था को भगवा रंग से रंगने की साजिश जारी है। दिक्कत यह है कि इस सबका कोई मुखर और प्रबल विरोध नहीं हो रहा है। शासक वर्ग की गैर भाजपा पार्टियां जो स्वयं भी नरम हिन्दुत्व का पक्षपोषण करती रही हैं इस स्थिति में नहीं हैं कि वे संघ के मंसूबों पर पानी फेर सकें।

एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग और संघ का यह गठजोड़ भारतीय समाज में हिन्दू फासीवादी आंदोलन के लिए फिलहाल बहुत सुनहरा मौका प्रदान कर रहा है। भारतीय समाज में आज हिन्दू फासीवाद का खतरा कितना और किस रूप में मौजूद है इसकी चर्चा इस लेख के अगले हिस्से में करेंगे।

कुल मिलाकर मोदी के छः माह के शासनकाल में आर्थिक संकट के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था को संकट से बाहर निकालने के कोई ठोस कदम नहीं उठाये जा सके हैं। स्थिति अभी यह बनी हुई है कि मोदी उन्हीं आर्थिक नीतियों को लागू करने में ही लगे हुऐ हैं जो संप्रग सरकार ने बनायी हुयी थी। असल में वे नीतियां भारतीय पूंजीवादी राज्य की आम सहमति से बनी नीतियां हैं। पूंजीवादी पार्टियों की अदला-बदली से उनमें कोई मूलभूत अंतर नहीं आ सकता है। फर्क नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रम के नये नाम रखने अथवा कम-ज्यादा जोर का पड़ सकता है। फर्क जो मोदी के छः माह के कार्यकाल में मूलरूप से पड़ा है वह यह कि राजनीतिक कार्यदिशा क्या हो। स्वाभाविक तौर पर मोदी की राजनीतिक कार्यदिशा भारतीय समाज के हिन्दुत्वकरण की है और वे उसे लागू कर रहे हैं। मोदी की राजनीतिक कार्यदिशा क्योंकि भारत के एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग की कार्यसूची में बाधक नहीं वरन् मददगार है इसलिए वह उसे लागू होने दे रहा है। इस रूप में मोदी को समर्थन, सहयोग देने वाली दोनों ताकतें एक दूसरे को बल प्रदान कर रही हैं। और साथ ही एक दूसरे से बल प्राप्त कर रही हैं। क्योंकि दोनों के हित मोदी कुशलतापूर्वक साध रहे हैं अतः मोदी दोनों के चहेते बने हुए हैं।

मोदी के लिए मुश्किलें न तो विपक्षी पार्टियों से, न भारतीय राज्य व्यवस्था की विभिन्न संस्थाओं-न्यायालय आदि से, न मीडिया की किसी खोज परक रिपोर्ट से पैदा होनी है। वह पहले रूप में गहराते विश्व आर्थिक संकट के साथ गहराते भारतीय अर्थव्यवस्था के संकट से पैदा होती है। और दूसरे रूप में वे भारतीय पूंजीवादी समाज के चरित्र, आम मेहनतकशों की बदहाल होती जाती अवस्था और उसके बढ़ते दमन से पैदा होंगी। और ये पैदा होना शुरू भी हो गयी हैं। मोदी सहित भारत के शासक वर्ग को क्योंकि इस बात का कम या ज्यादा अहसास है इसलिए वह एक तरफ भारतीय राज्य को और ज्यादा काले कानूनों, हथियारों से लैस कर रहा है तो दूसरी तरफ हिन्दुत्व के राजनीतिक एजेण्डे को परवान चढ़ाकर वह भारतीय समाज में पैदा हो रहे वर्ग संघर्ष की धार को कुंद कर देना चाहता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को अपने इतिहास में आज पहली दफा वह मौका मिला है जब उसको भारत के एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के काफी बड़े हिस्से का सबसे ज्यादा विश्वास व साथ मिला है। मोदी ने क्योंकि संघ को यह मौका काफी मेहनत से दिलवाया है अतः वह किसी भी महत्वाकांक्षी शासक की तरह इस मौके का पूरा फायदा उठा लेना चाहता है। वह भारत की सत्ता में अभी ही घोषित तौर पर एक दशक से ज्यादा शासन करना चाहता है। और मौका लगे तो वह आजीवन ही ऐसा करना चाहेगा। अब यह दीगर बात है कि इतिहास उसके साथ क्या और कैसे सुलूक करेगा।

II

हिन्दू फासीवाद का भविष्य

भारतीय समाज में हिन्दू फासीवादी संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को सक्रिय हुए लगभग 9 दशक हो गये हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों से इस संगठन को संरक्षण प्राप्त था और अपनी बारी में यह संगठन उनके शासन को दीर्घजीवी बनाने में सहायक था। मुस्लिम लीग और संघ ने भारत के बंटवारे में जो घृणित भूमिका निभायी वह जगजाहिर है। 46-48 के दौर में संघ ने विभाजन की विभीषिका को बढ़ाने व मुस्लिमों के कत्लेआम में मुख्य भूमिका निभायी थी। यही भूमिका मुस्लिम लीग ने हिन्दूओं, सिक्खों के कत्लेआम व पलायन में पंजाब, सिंध व बंगाल में निभायी थी। महात्मा गांधी की हत्या करके संघ ने अपने उन तौर-तरीकों की पहली झलक दिखला दी थी जो खास तरह के फासिस्ट अपराधिक गिरोह की होती है। गांधी की हत्या के बाद संघ लम्बे समय तक भारतीय समाज में लगभग अलगाव में पड़ा रहा। हालांकि वह अपना प्रचार व प्रभाव बढ़ाने के लिए एक के बाद एक अनुषंगी संगठनों का निर्माण करता चला गया। और यह प्रक्रिया अस्सी-नब्बे के दशक तक जारी रही।

संघ को भारतीय समाज में मान्यता व स्थान पड़ोसी देशों से भारतीय शासकों के छेड़े गये युद्धों, अकाल-बाढ़ के समय इनके द्वारा हिन्दू समाज में सेवा के द्वारा बनायी गयी छवि तथा खासकर 75-77 के समय इंदिया गांधी द्वारा थोपे गये आपातकाल के समय उमड़े जनाक्रोश का साथ देने के कारण मिला। इस तरह से अस्सी का दशक आते-आते संघ और उसकी राजनीतिक विंग भारतीय जनता पार्टी (जो पहले जनसंघ के नाम से सक्रिय थी) एक वास्तविक राजनीतिक ताकत बन गये।

अस्सी-नब्बे के दशक में इनका तेजी से उत्थान हुआ और अब ये इस स्थिति में आ गये कि केन्द्र की सत्ता पर अपना दावा ठोंक सकें। इससे पहले ये कई राज्यों में सत्ता में आ चुके थे। आडवाणी की रथयात्राओं व बाबरी मस्जिद ध्वंस के इनके आंदोलन ने भारतीय समाज में इन्हें स्थायी जनाधार प्रदान कर दिया। अटल के नेतृत्व में केन्द्र में सरकार बनाने और तीसरे दफे में पूरे पांच साल शासन चला कर इन्होंने भारत के पूंजीपति वर्ग की दूसरी विश्वस्त पार्टी का दर्जा हासिल कर लिया। भारत की सत्ता के गलियारे में इनका स्थान स्थायी हो गया।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अपने राजनीतिक विंग भाजपा के जरिये वह स्थान पा गया जहां से भारत में हिन्दू फासीवाद का खतरा कोई दूर भविष्य की एक सम्भावना के बजाय ठोस, वास्तविक और एकदम निकट भविष्य की चीज बन गया। हिन्दू फासीवाद

और भारत के एकाधिकारी पूंजी के 2012-14 के काल में गठजोड़ कायम हो जाने से यह और भी विकराल और तात्कालिक चुनौती बनकर उभर गया।

आज इस फासीवादी संगठन की ताकत का अनुमान कुछ तथ्यों के आधार पर लगाया जाय तो वह इस प्रकार है :

केन्द्र में बहुमत के साथ भाजपा द्वारा सरकार कायम करने के साथ आज नौ राज्यों में इसकी अपनी अथवा गठबन्धन करके बनायी गयी सरकारें हैं।

2014 के आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को 17 करोड़ से अधिक मतदाताओं का समर्थन प्राप्त हुआ। इस लिहाज से आज यह भारत की सबसे बड़ी पार्टी है।

भारत में मजदूरों का सबसे बड़ा संगठन इनका भारतीय मजदूर संघ है। इसी तरह सबसे अधिक सदस्य संख्या वाला छात्र संगठन इनका ही अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद है।

समाज में विभिन्न वर्गों-तबकों में कार्यरत इनके संगठनों की सख्या सौ से अधिक है। इनके विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की संख्या सैकड़ों में है। इनकी सशक्त मौजूदगी को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से लेकर इण्टरनेट यानी हर जगह देखा जा सकता है।

देश के हर शहर-कस्बे में फैली इनके पास अरबों रुपये की स्थायी सम्पत्ति है। देश-विदेश से प्राप्त होने वाली आय का अनुमान लगाना इस अर्द्ध गुप्त संगठन के बारे में सम्भव नहीं है।

परम्परागत हथियारों से लेकर आधुनिक हथियारों से लैस इनके कार्यकर्ताओं को कई मौकों पर खासकर विजयादशमी के दिन शस्त्र पूजा के दौरान सार्वजनिक ढंग से देखा जा सकता है। 'समझौता एक्सप्रेस', मालेगांव, मक्का मस्जिद आदि में इनके द्वारा किये गये आतंकी हमले की ताकत से सहज अनुमान लगाया ला सकता है कि यह भारत में सबसे बड़ा परम्परागत हथियारों से लैस गैर सरकारी संगठन है। हथियारों का इनके पास वैध-अवैध जखीरा है।

अपने मुस्लिम विरोधी कुत्सित प्रचार से और भारत में व्याप्त सवर्ण हिन्दू मानसिकता के प्रभुत्व के कारण आज भारत की सेना, अर्द्ध सैनिक बलों, गुप्तचर संस्थाओं से लेकर कार्यपालिका व न्यायपालिका के हर हिस्से में इनके खुले-छिपे समर्थक लाखों की संख्या में मौजूद हैं।

इस तरह के अनेकानेक तथ्यों और ब्यौरों को और ज्यादा तथ्यपरक व खोजपरक ढंग से संकलित किया जाय तो इनकी पूरी और वास्तविक ताकत का सही अनुमान लगाया जा सकता है। इस पर अलग से एक पूरी पुस्तिका लिखी जा सकती है। परन्तु उपरोक्त तथ्यों से यह सुस्पष्ट है कि आज राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भारतीय राज्य के भीतर एक अलग राज्य की हैसियत रखता है। वह मुस्लिम आतंकी संगठनों तालिबान, अलकायदा, इस्लामिक स्टेट आदि से किन्हीं भी मामलों में कम नहीं बल्कि उसके समर्थन व प्रभाव का क्षेत्र इनसे बहुत-बहुत बड़ा है।

मोदी सरकार कायम होने के बाद संघ के हौंसले दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं। इसके नेता व कार्यकर्ता अपनी दबी-छुपी कार्यसूची को खुलेआम समाज में प्रस्तुत करने लगे हैं। उद्दण्डतापूर्वक अपने विरोधियों को चुनौती व धमकी देने लगे हैं। केन्द्र सरकार की ओर से ही नहीं विभिन्न राज्यों में, जहां इनकी सरकारें हैं, इनके नेताओं व कार्यकर्ताओं को सत्ता का संरक्षण अभूतपूर्व स्तर तक पहुंच गया है। इनकी उद्दण्डता, आतंक से समाज का अल्पसंख्यक तबका ही नहीं बल्कि अन्य लोग भी विचलित और परेशान हैं।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को अलग से किसी नई राज्य मशीनरी के निर्माण की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे तो महज पहले से बनी-बनायी मशीनरी में पहले अपना गहरा प्रभाव और फिर पूरा कब्जा कर लेना है। बीसवीं सदी के फासिस्ट संगठनों और उनके नेताओं ने इस रणनीति को अपनाया था। संघ अपने जन्म के समय से ऐसी ही नीति पर काम करता रहा। आज अब उसका इस मशीनरी पर जब काफी प्रभाव कायम हो गया है और मोदी के कार्यकाल में इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होनी है तो वह उस समय को करीब आते देख रहा है जब पूरी राज्य मशीनरी पर उसका कब्जा हो जायेगा। वह इस बात का मंसूबा पाल रहा है कि अपने जन्म के सौ वर्ष पूरे होने तक वह भारत को एक हिन्दू राष्ट्र घोषित करने की स्थिति में अवश्य ही आ जायेगा। उसकी आज की हैसियत, भारतीय समाज में उनके प्रभाव और कोई वास्तविक मजबूत चुनौती नहीं दिख पाने के कारण क्या कोई ऐसा है जो इस सम्भावना से पूरे तौर पर इन्कार कर सके।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को भारतीय समाज में व्याप्त पिछड़े, धार्मिक व मध्ययुगीन विचारों व संस्थाओं से वह उर्वर जमीन हासिल होती रही है जहां उनकी हिन्दू फासिस्ट फसल लहलहा सके। अस्सी-नब्बे के दशक में उसने जो बुनियादी बढ़त हासिल की वह एक ऐसे समाज में अधिकाधिक सम्भव है जिसमें कोई जनवादी क्रांति (चाहे बुर्जुआ या चाहे सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व) न घटी हो। अपने सामन्ती अतीत से निर्णायक विच्छेद न होने की स्थिति में भारत में हिन्दू फासिस्ट विचारों को फूलने-फलने का मौका आसानी से मिलता रहा है। ऊपर से भारत का शासक वर्ग जिसका अधिकांश सवर्ण हिन्दुओं से मिलकर बना है, पहले से ही इन घटिया विचारों, संस्कृति व दर्शन का पक्षपोषण करता रहा है।

भारत की आजादी की लड़ाई में कई प्रमुख राष्ट्रीय नेता घोर हिन्दूवादी रहे हैं। तिलक, मदन मोहन मालवीय जैसे कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष ही नहीं बल्कि स्वयं महात्मा गांधी घोर पिछड़े प्रतिक्रियावादी मध्ययुगीन हिन्दू धर्म के विचारों और संस्कृति का पक्षपोषण करते थे। और यही स्थिति आजादी के बाद बनी रही। नेहरू व्यक्तिगत तौर पर धार्मिक न होने के बावजूद पूंजीपति वर्ग के हितों के

रक्षार्थ वह सब करते रहे जो इस संदर्भ में आवश्यक था। नेहरू के बाद इंदिरा और राजीव तो हिन्दू मतों को हासिल करने के लिए किसी भी हद तक गये।

इस तरह से देंखें तो संघ के विचारों व उसके प्रभाव को बढ़ाने में स्वयं शासक वर्ग के सदस्य व राजनीतिक नेतृत्व लगातार जमीन उपलब्ध कराता रहा है। और यदि गौर से भारत के पूंजीपति वर्ग के व्यवहार देखा जाये तो एक सुरक्षा पंक्ति के रूप में वह संघ को पालता-पोसता रहा है।

संप्रग सरकार के एक दशक के शासन के बाद उसके खिलाफ उपजे आक्रोश व उसके प्रति भारत के एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग की उपेक्षा से जो स्थान रिक्त हुआ उसे संघ-भाजपा भर सकते थे। और मोदी के नेतृत्व को सामने ला व उभार कर पूंजीपति वर्ग ने अपनी इस दूसरी सुरक्षा पंक्ति का पूरा उपयोग किया। भारत के पूंजीपति वर्ग की यह सुरक्षा पंक्ति यही हालात रहे तो कांग्रेस पार्टी को और पीछे धकेल कर पहली सुरक्षा पंक्ति का स्थान ग्रहण कर लेगी। ऐसी स्थिति में भारतीय पूंजीवाद और हिन्दू फासीवाद दो अलग-अलग चीजें नहीं बल्कि एक ही चीज बन जायेंगे।

आज के भारतीय राज्य का वस्तुगत मूल्यांकन किया जाय तो यह कहना कि यह एक फासीवादी या अर्द्ध फासीवादी राज्य में तब्दील हो गया है गलत होगा। यह यथार्थ की अतिरंजना होगी। और दूसरे अर्थों में आज की चुनौतियों को सही व ठीक ढंग से न समझ पाना होगा।

भारत में कुछ लोगों ने मोदी सरकार के द्वारा उठाये जा रहे कुछ कदमों के आधार पर इसे अर्द्ध फासीवादी राज्य कहना शुरू कर दिया है। इसमें वे जिन कदमों को बताते हैं वे इस प्रकार हैं :

– योजना आयोग को समाप्त करना। हालांकि इसके संदर्भ में यह याद रखना होगा कि नई आर्थिक नीतियों के जमाने में इसकी प्रासंगिकता पर काफी लम्बे समय से सवाल उठते रहे हैं। और इसके पुनर्गठन की सिफारिश पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने ही कर दी थी।

–केन्द्र सरकार के विभिन्न नीतिगत और महत्वपूर्ण निर्णय लेने वाले मंत्रियों के समूह (ग्रुप ऑफ मिनिस्टर्स) जैसे सामूहिक निर्णय के निकाय को समाप्त करना और उसके स्थान पर सारे निर्णयों को स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा लेना। मंत्रियों की नाममात्र की हैसियत रह जाना। यहां तक कि उनके पास अपने निजी सचिवों को भी नियुक्त करने का अधिकार न होना और उनके मंत्रालयों के नौकरशाहों को प्रधानमंत्री द्वारा मंत्रियों को नजरअंदाज कर सीधे निर्देश देना।

–न्याय पालिका की स्वतंत्रता की अवमानना करना।

–राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शिक्षा व संस्कृति के क्षेत्र में उठायी गयी मांगों को पूरा करना।

–देश की संसद व राज्य विधान सभाओं व सरकारों का क्षरण करना।

–विदेश नीति को अखण्ड भारत की संघ की सोच से संचालित करना।

इसी तरह की ढेरों अन्य बातें भारतीय राज्य के अर्द्ध फासीवादी या फासीवादी राज्य बन जाने के संदर्भ में की जा रही हैं। ये या ऐसे ही अन्य तथ्य अपने आप में सही हैं परन्तु इनके आधार पर भारत को अर्द्ध फासीवादी/फासीवादी कहना ठीक नहीं है। एक तो इस तरह के जिन कदमों की आलोचना की जा रही है उनमें भारत में व्याप्त जनवाद के चरित्र की ठीक समझ का अभाव है। और दूसरी तरफ नेहरूवादी राज्य मॉडल के प्रति मोह व अतीतग्रस्तता है और उससे भी बढ़ कर भारतीय राज्य के लम्बे काल से कायम प्रतिक्रियावादी चरित्र को नहीं समझ पाना है। और गैर जरूरी ढंग व आधार से मोदी और उसके पूर्व की सरकारों की तुलना करना व अन्तर बताना है। यह अपने आप में बेहद यांत्रिक व गैर ऐतिहासिक ढंग से सोचना है।

यहां हमें फासीवादी आंदोलन और फासीवादी राज्य के फर्क को ठीक से समझ लेना होगा। फासीवादी आंदोलन किसी भी पूंजीवादी राज्य में हो सकता है। उसका प्रभाव कम या ज्यादा हो सकता है और यहां तक कि वह सत्ता में भागीदारी भी कर सकता है। और तब भी वह सामान्य पूंजीवादी राज्य बना रह सकता है।

फासीवादी राज्य तब जन्म लेता है जब पूंजीपति वर्ग क्रांतिकारी संकट के काल में सामान्य ढंग से राज्य नहीं चला पाता है। मजदूर वर्ग सहित अन्य शोषित -उत्पीड़ित अपनी बदहाली के कारण स्थापित सत्ता के खिलाफ हो जायें और उनकी सक्रियता क्रांतिकारी स्तर को छू रही हो। सर्वहारा क्रांति का खतरा मौजूद हो। ऐसे समय में बुर्जुआ वर्ग खासकर एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग फासीवादी आंदोलन के हाथ में पूर्ण रूप से सत्ता सौंप दे और बुर्जुआ जनवाद को तिलांजलि देकर नग्न तानाशाही अथवा फासीवादी राज्य कायम कर दे। फासीवादी राज्य सभी जनवादी अधिकारों को खत्म कर एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के हितों को साधने के लिए कायम की गई नग्न तानाशाही है।

आज भारत में ऐसी स्थिति नहीं है। यहां क्रांतिकारी संकट की स्थिति नहीं है। यहां सर्वहारा वर्ग का आंदोलन ऐसी स्थिति में नहीं है कि वह पूंजीवादी राजसत्ता के लिए चुनौती पेश कर रहा हो। इसके उलट यहां पूंजीवादी राजसत्ता मजबूत है और चुनावों में बढ़ता मतदान प्रतिशत आम जनता के इस पूंजीवादी व्यवस्था पर कायम भरोसे को दिखलाता है।

हां! भारत में हिन्दू फासीवादी आंदोलन मौजूद है। वह भारत में हिन्दू फासीवादी राज्य कायम करने के इरादे रखता है परन्तु ऐसा राज्य आज भारत के एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग का अभीष्ट नहीं है। परन्तु ऐसी स्थिति पैदा होने पर जिसमें क्रांतिकारी संकट मौजूद हो तो इसकी पूरी संभावना है कि भारत में फासीवादी राज्य कायम हो जाये।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन भारत के इतिहास में आज के मुकाबले इतना शक्तिशाली और प्रभावशाली कभी नहीं रहा। यह एकदम सच है परन्तु अभी भारत को एक हिन्दू फासीवादी/अर्द्ध फासीवादी राज्य या समाज में तब्दील करने में उसके सामने कई बड़ी बाधायें हैं। ये बाधायें भारतीय समाज की जटिलता और विशालता, सामाजिक संरचना के साथ वर्गीय संरचना (और यहां तक कि उसमें स्वयं पूंजीपति वर्ग की संरचना व विभिन्न कोटियां), राजनीतिक ढांचा, न्यायपालिका के साथ भारतीय संविधान के वर्तमान चरित्र आदि आदि बातों के साथ और सर्वोपरि तौर पर भारत के मजदूर, मेहनतकशों के साथ इक्कीसवीं सदी के नौजवान बन जाते हैं। भारत के मजदूर-मेहनतकशों व नौजवानों को इतिहास की वर्तमान अवस्था और गति के कारण हिन्दू फासीवादी आंदोलन के लिए अपने मध्ययुगीन बर्बर विचारों और तरीकों से कायल करना बीसवीं सदी के फासिस्ट आंदोलन की तरह आसान नहीं है।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन की राह में कुछ प्रमुख बाधाओं की थोड़ा खुलकर बात करें तो वे इस प्रकार हैं :

हिन्दू फासीवादी आंदोलन भारत की विशाल मजदूर आबादी के जीवन की मूलभूत समस्याओं का लम्बे काल तो क्या बेहद अल्पकाल में भी समाधान पेश करने में अक्षम है। वह चालीस के दशक के हिटलर के नेतृत्व में नाजीवादियों की स्थिति में नहीं है कि वह अपने बाजार व प्राकृतिक संसाधनों के स्रोत क्षेत्र का सामरिक ढंग से विस्तार कर सके। चीन, पाकिस्तान के शासक तो राह के रोड़े हैं ही शेष दक्षिण एशिया में भी क्षेत्रीय विस्तार की सम्भावना न्यून है। भारत का मजदूर आंदोलन अपने भावी विकास से इसके मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध बन सकता है। और उससे आगे जाकर वह इसके विनाश का कारण बनने की पूरी क्षमता व संभावना रखता है।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन की कार्यसूची ऐसी है कि इसे लागू करने के दौरान स्वाभाविक तौर पर अल्पसंख्यकों, उत्पीड़ित दलित-पिछड़ी जातियों, आदिवासियों, स्त्रियों व उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं व विभिन्न भाषायी समूहों के विभिन्न किस्म के आंदोलनों से उसका सामना होना है। और आबादी को फासीवादी राज्य मशीनरी के घोर दमन के बावजूद काबू में नहीं रखा जा सकता है। हिन्दू फासीवादी जिस 'एक राष्ट्र, एक भाषा, एक संस्कृति, एक धर्म ... ... ' के ऐजेण्डे को लागू करवाना चाहेंगे वह भारतीय समाज के यथार्थ में अपने पहले दिन से घोर प्रतिरोध को जन्म देगा। भारत के हालिया चुनाव में भाजपा को सबसे बड़ी सफलता मिली परन्तु उसी को यदि ठीक ढंग से देखा जाय तो भारत के करीब 80 फीसदी मतदाताओं ने भाजपा को मत नहीं दिया।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन की राह में स्वयं भारत के पूंजीपति वर्ग की सरंचना भी एक बाधक है। इस चुनाव में भारत के पूंजीपति वर्ग के एक बड़े हिस्से ने इसका समर्थन किया परन्तु एक ठीक-ठाक हिस्सा इनके साथ नहीं था। तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, उड़ीसा, प. बंगाल आदि राज्यों में इन्हें कोई खास चुनावी सफलता नहीं मिली। भारत के पूंजीपति वर्ग में इजारेदार-गैर इजारेदार, शहरी-देहाती, कृषि-औद्योगिक-व्यापारिक, अखिल भारतीय-क्षेत्रीय, धार्मिक व जातीय आदि, आदि आधार पर ढेरों विभाजन हैं। यहां समांग पूंजीपति वर्ग नहीं है। इसका न केवल आकार विशाल है बल्कि यह कई श्रेणियों, उपश्रेणियों में विभाजित है। हिन्दू फासीवादी आंदोलन के लिए पूरे पूंजीपति वर्ग को अपने पीछे लामबंद करना काफी मुश्किल है।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा और अपने घृणित चरित्र का उद्घाटन करेगा वैसे-वैसे समाज के विभिन्न वर्गों-तबकों की उसके प्रति जागृति, प्रतिरोध और उससे बढ़कर घृणा बढ़ती जायेगी। जैसा कि हाल के महीनों में इनके द्वारा सवर्ण हिन्दू संस्कृति के तहत रहन-सहन, खान-पान आदि आदि मामलों में दिये गये फतवों के कारण हुआ। परन्तु इस तरह के स्वतः स्फूर्त आंदोलनों या एन.जी.ओ. मार्का प्रतिरोध से इस तरह के फासीवादी आंदोलन का कुछ नहीं बिगड़ने वाला है। उलटे वह इससे एक तरह की मजबूती भी ग्रहण कर सकता है। 'किस ऑफ लव' टाइप के विरोध प्रदर्शन क्षोभ, आक्रोश के प्रतीक तो बन सकते हैं परन्तु कोई ठोस चुनौती नहीं खड़ी कर सकते हैं।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन के खिलाफ भारत में इनकी चुनावी सफलता के बाद कई तरह की राजनीतिक प्रतिक्रियायें देखने को मिल रही हैं। इनमें शासक वर्ग के सत्ता से वंचित हिस्से से लेकर किस्म-किस्म के राजनीतिक समूह, संगठन हैं।

एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग से संरक्षण व लम्बे समय से समर्थन प्राप्त कांग्रेस पार्टी जो स्वयं नरम हिन्दुत्व की पक्षधर रही है अभी तक सिर्फ मोदी सरकार की नीतियों के खुलासे अथवा अपने आप को एक विपक्षी दल के रूप में पेश करने में लगी रही है। हिन्दू फासीवादी आंदोलन को यह अपने चरित्र के कारण कोई खास चुनौती देने की स्थिति में है ही नहीं।

इनसे ज्यादा चुनौती कृषक, देहाती, क्षेत्रीय पूंजीपति वर्ग की पार्टियां सपा, बसपा, राजद, बीजद, तृकां, आदि दे सकते हैं। परन्तु ये भी कोई ठोस व निर्णायक चुनौती अपने चरित्र व वर्ग के कारण नहीं दे सकते।

इनसे थोड़ा ज्यादा चुनौती संसदीय वामपंथी पार्टियां दे सकती हैं। परन्तु इनके चरित्र व अतीत व वर्तमान को देखते हुए ये चाहें अथवा न चाहें ये वर्तमान हिन्दू फासीवादी आंदोलन की प्रगति का एक कारण बन गयीं। ये भी कोई ठोस चुनौती इन्हें नहीं दे सकते हैं।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन को ठोस, निर्णायक चुनौती सिर्फ व सिर्फ असली मजदूर आंदोलन के द्वारा ही मिल सकती है। अखिल भारतीय स्तर पर जितनी जल्दी क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन व निर्माण होता है उतनी ही जल्दी हिन्दू फासिस्ट आंदोलन का प्रतिरोध किया जा सकता है।

अखिल भारतीय स्तर पर गठित कम्युनिस्ट पार्टी ही नेतृत्व देकर उस संयुक्त मोर्चे का निर्माण कर सकती है जिसमें भारत के व्यापक स्तर पर शोषित-उत्पीड़ित जन और उनके विभिन्न तरह के राजनीतिक संगठन शामिल हो सकते हैं।

क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के अभाव में जो भी संयुक्त मोर्चे हिन्दू फासीवादी आंदोलन के खिलाफ खड़े किये जायेंगे उनका हश्र पहले से ही तय है। भाजपा को रोकने के लिए बने संप्रग जैसे गठबन्धन पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर बनने वाले चुनावी और सत्ता पाने के गठबन्धन हैं। इनसे हिन्दू फासीवादी आंदोलन का कुछ खास बिगड़ता नहीं है।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन को ऐसा कोई भी राजनीतिक मोर्चा शिकस्त नहीं दे सकता जो पूंजीवाद की सीमाओं में कैद हो। उसे तो सर्वहारा वर्ग की पार्टी ही शिकस्त दे सकती है जो पूंजीवादी सत्ता के उखाड़ फेंकने के न्यूनतम कार्यक्रम से अपना काम प्रारम्भ करती है। ऐसी आमूल-चूल परिवर्तन का प्रोग्राम रखने वाली सर्वहारा पार्टी फासीवाद विरोधी मोर्चे को वास्तविक नेतृत्व व आधार प्रदान कर सकती है।

■■■